P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-10, ISSUE-1 August -2021
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

नैषधीयचरितम् और धर्मशास्त्रीय सन्दर्भ

Naishadha Charita and Theological References

Paper Submission: 12/08/2021, Date of Acceptance: 23/08/2021, Date of Publication: 24/08/2021

मनीष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत एवं प्राच्य भाषा विभाग,
जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी० जी० कॉलेज, बाराबंकी
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

पारम्परिक अर्थ में धर्म तथा वैधानिक कर्तव्यों का उपदेश करने वाला शास्त्र, धर्मशास्त्र कहलाता है। दुविधा की स्थिति में आचरण का उचित मार्ग – निर्देश धर्मशास्त्रों यथा स्मृतियों आदि से ही निर्धारित होता है। नैषधीयचरितम् में भी विभिन्न स्थलों पर धर्मशास्त्र के अनुरूप आचरण के व्यावहारिक संकेत प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर श्रीहर्ष की धर्मशास्त्रीय परम्पराओं के प्रति प्रतिबद्धता अभिव्यक्त होती है। श्री हर्ष द्वारा नैषध में विभिन्न स्थलों पर धर्मशास्त्रीय नियमों को घटनाओं में गूंथा गया है, जो वास्तव में श्रीहर्ष के प्रखर पाण्डित्य का ही परिणाम है। किन्तु ध्यातव्य है कि नैषध में ऐसे स्थलों पर अनुशासन का संदर्भ गूढ है।

In the traditional sense, the scriptures preaching religion and legal duties are called Dharmashastras. In the case of a dilemma, the proper course of conduct is determined by the directions of Dharmashastras such as Smritis etc. In the Naishadhiyacharitam also, practical indications of conduct according to the scriptures are found at various places, on the basis of which Sriharsha's commitment to theological traditions is expressed. The theological rules have been woven into incidents by Shri Harsha at various places in Naishadha, which is actually the result of the intense erudition of Shri Harsha. But it is to be noted that the reference to discipline at such places in Naishadha is cryptic.

मुख्य शब्द : धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र, विधि, स्मृति, नैषध।

Keywords: Theology, ethics, law, memory, medicine.

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के महनीय महाकाव्यों में महाकवि श्रीहर्ष द्वारा रचित नैषधीयचरितम् अपने काव्य सौष्ठव और काव्योचित कल्पनाओं की दृष्टि से अप्रतिम है। संस्कृत काव्य के अपकर्ष काल में अतिशय उत्कर्ष प्राप्त करने वाला यह काव्य, निर्विवाद रूप से श्रेष्ठता के अधिकारी कविकुल गुरु कालिदास को छोड़कर साधारणतया भारवि तथा माघ की अन्यतम रचनाओं से कहीं अधिक उच्च्कोटि का स्वीकार किया गया है –

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः

तथापि नैषधीयचरितम् को भारत के श्रेष्ठतम काव्य ग्रंथो में स्थान नहीं प्राप्त हो सका। विद्वानों के मत में, सम्भवतःइसका कारण श्रीहर्ष की प्रतिभा का अतिशय उपयोग है जो अपने चमत्कार के लिये स्वाभाविकता की उपेक्षा करके कृत्रिमता की पराकाष्ठा को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। अस्तु, सत्य इन दोनों ही मतों के बीच में है। यह विद्वज्जन - बोध्य काव्य है , पामरजनश्लाघनीय नहीं, इसीलिये आलोचकों की दृष्टि में पर्याप्त अंतर है।

साहित्य-समीक्षा

नैषध को नल और दमयंती के लौकिक प्रेम का प्रशस्ति-काव्य स्वीकार किया जाता है, किन्तु परिशीलन के उपरान्त नैषधं विद्वदौषधम् के रूप में उसके एक ज्ञानकोष में अंतरित होने से उसका प्रदेय परिवर्तित होता गया।

नैषध की विषयवस्तु प्रेम पर आधारित है और बलदेव उपाध्याय तथा डॉ. रमा शंकर त्रिपाठी आदि विद्वज्जनों ने जहाँ उक्त के अतिरिक्त कतिपय दार्शनिक और आचार-विषयक बिन्दुओं को भी उपस्थापित किया है, व्याकरणात्मक सन्दर्भों का भी उल्लेख किया है वहीं वैधानिक कर्तव्यों का सीमित वर्णन है।

इस शोध-पत्र में विभिन्न आचारशास्त्रीय ग्रंथों यथा मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर नैषध के वैधानिक अतिरिक्त स्वरुप को, जिसके सन्दर्भ अत्यंत अल्प मात्रा में नैषध में

उपलब्ध हैं, पिपीलिका प्रयास से जिज्ञासु जन के लिए यथा संभव प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

संस्कार, सदाचार, धर्म, व्यवहार और प्रायश्चित्त जैसे विविध विषयों को समाहित करने वाले धर्मशास्त्रों का प्रमुख प्रदेय यही है कि ये अधिकार और कर्तव्यों का निर्देश करते हैं। हिन्दू विधि के ये प्रमुख स्रोत आधुनिक विधि तथा न्यायिक नियमों को निर्धारित करने में अपने महत्त्व तथा भूमिका का निर्वाह कर चुके हैं। संस्कृत साहित्य के महनीय महाकाव्य नैषधीयचरितम् को सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है, जिसमें श्रीहर्ष की सरस्वती का सौन्दर्य अपने शील केसाथ चरम पर उपस्थित है।

अतः ग्रन्थ में प्रतिपादित आचार-शास्त्रीय वर्णन नैषध की अभिनव दृष्टि के उपस्थापन और उसकी व्याख्या में सहायक हो सकते हैं।

विषय-उपस्थापन

मार्मिक आलोचक की दृष्टि में नैषध काव्य मात्र लौकिक प्रेम का प्रशंसक प्रशस्ति –काव्य नहीं है अपितु अलौकिक प्रेम की भव्य भावना तथा साधना प्रस्तुत करने वाला एक रहस्यमय काव्य है, जिसमें श्रीहर्ष ने अपने समस्त ज्ञान भाण्डार का इस प्रकार परिचय दिया है कि नैषध काव्य मात्र की कोटि से निकलकर विभिन्न विषयों के ज्ञान का एक बृहत् कोश बन गया है –नैषधम्विद्वदौषधम्।

पूर्ण प्रवीणता और परिष्कृत अभ्यास को काव्य समुद्भव का कारण स्वीकार किया गया है।[1] यही प्रवीणता,'व्युत्पत्ति' है जिसके अन्तर्गत विश्व का समपूर्ण ज्ञान समाहित है।श्री हर्ष ने नैषध की रचना पूर्ण 'व्युत्पत्ति' के साथ की है, जिसमें धर्मशास्त्र विषयक विभिन्न संदर्भों का उल्लेख बहुशः प्राप्त होता है।

पारम्परिक अर्थ में धर्म तथा वैधानिक कर्तव्यों का उपदेश करने वाला शास्त्र, धर्मशास्त्र कहलाता है। दुविधा की स्थिति में आचरण का उचित मार्ग – निर्देश धर्मशास्त्रों यथा स्मृतियों आदि से ही निर्धारित होता है। नैषधीयचरितम् में भी विभिन्न स्थलों पर धर्मशास्त्र के अनुरूप आचरण के व्यावहारिक संकेत प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर श्रीहर्ष की धर्मशास्त्रीय परम्पराओं के प्रति प्रतिबद्धता अभिव्यक्त होती है।

विषय-विस्तार

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृतियो में नग्न स्त्री को देखना निषिद्ध बताया गया है जिसका स्मरण करते हुये नल के उपवन विहार विषयक वर्णन में श्रीहर्ष कहते हैं कि पुष्प लताओं के साथ पवन की काम क्रीडाओं को देखकर नल आंखें बंद कर लेते हैं।[2] वृक्षों,तृणों और लतादि को मनु ने अंतश्चेतना से व्याप्त तथा सुख दुःख का अनुभव करने वाले जीवादिको में सम्मिलित स्वीकार किया है और इसी व्याज से राजाओं द्वारा मृगया को श्रीहर्ष ने अनिंदित माना है।

अबलस्वकुलाशिनो झषान्निजनीडद्रुमपीडिनः खगान्।
अनवद्यतृणार्दिनो मृगान्मृगयाघाय न भूभुजां घ्रताम॥[3]

अर्थात् मत्स्य अपने ही कुल के निर्बलों का भक्षण कर लेते हैं,पक्षी अपने आश्रय स्थल वृक्षों को ही कष्ट पहुंचाते हैं, तथा मृगादि निर्दोष तृणादिकों को पीड़ा देते हैं। अतः इन मत्स्य खग मृगादिकों को यदि राजा मृगया में मारते हैं तो यह पाप उनको नहीं लगता।

मिताक्षरा के आचार अध्याय में उल्लिखित है कि पतिव्रता वही स्त्री है जो अपने पति की मृत्यु के पश्चात् स्वयम् देह त्याग कर दे। धर्मशास्त्र की इस आज्ञा को ध्यान में रखकर दमयंती, मदन को उलाहना देती है –

अनुममार न मार कथं नु सा रतिरतिप्रथितापि पतिव्रता ।[4]

दान के विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति का मत है, कि अयाचित वस्तु दी जाने पर प्रत्येक स्थिति में उसे स्वीकार कर लेना चाहिये भले ही वह दुराचारी द्वारा प्रदत्त हो –अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः।

स्मृति की इसी आज्ञा को हंस प्रमाण रूप में नल के सम्मुख उपस्थित करता है।[5] पुनः जो दान, पात्र के पास स्वयं जाकर दिया जाय उसका फल अनंत होता है, जो पात्र को बुलाकर दिया जाय, उसका सहस्र गुना और जो पात्र द्वारा याचना करने पर दिया जाय, उसका आधा फल होता है, ऐसा मिताक्षरा में वर्णित है।[6] नल की अयाचित दान देने की अधीरता में स्मृति की पूर्वोक्त आज्ञा स्पष्ट दिखायी देती है –

मीयतां कथमभीप्सितमेषां दीयतां कथमयाचितमेव ।
तं धिगस्तु कलयन्नपि वाञ्छामर्थिवागवसरं सहते यः॥[7]

कवि किसी काव्य की रचना अंतर्भावनाओं से प्रेरित होकर ही करता है।धर्मशास्त्रों का सम्यक् अध्ययन करने का ही परिणाम था कि श्रीहर्ष ने अपनी लेखकीय सिद्धि हेतु धर्मशास्त्रों में निबद्ध आचार दर्शन को नैषध में पिरोया है। मनु का वचन है कि गृहस्थ आश्रम अन्य समस्त आश्रमों का आश्रयदाता ज्ञानदाता और अन्नदाता है। अतः सर्वश्रेष्ठ है। नल को स्मृतिकार के इन वचनों का स्मरण दिलाते हुए दमयंती का कथन है –

वर्षेषुयद्भारतमार्यधुर्याः स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु।
तत्रास्मि पत्युर्वरिवस्ययेह शर्मोर्मिकिर्मीरितधर्मलिप्सुः॥[8]

अर्थात् श्रेष्ठ महापुरुषों ने आश्रमों में गृहस्थ आश्रम की भांति देशों में भारतवर्ष की अत्यधिक प्रशंसा की है, मैं उसी पुण्य देश में निवास करती हुई पतिसेवा के माध्यम से अपना परम मंगलमय धर्म अर्जित करना चाहती हूँ। नैषध के सत्रहवें सर्ग में मोह वर्णन का प्रसंग प्राप्त होता है, जहाँ गृहस्थ आश्रम की इसी

श्रेष्ठता का पुनरुल्लेख आचार्य श्रीहर्ष करते हैं कि काम , क्रोध तथा लोभ वैसे ही मोह के अधीन रहते हैं जैसे ब्रह्मचारी,वानप्रस्थी तथा संन्यासी सभी गृहस्थ के आश्रित होकर अपना जीवन यापन करते हैं –

ब्रह्मचारिवनस्थायियतयो गृहिणं यथा ।
त्रयो यमुपजीवन्ति क्रोधलोभमनोभवाः॥[9]

अतिथि सत्कार के सम्बन्ध में स्मृतिकार मनु का कथन है कि तृण, भूमि, जल तथा सत्य एवं प्रिय वाणी – ये चार वस्तुएं सज्जनों के घर से कभी नहीं जातीं(मनु० 3/101) स्मृतिकार की इसी आज्ञा का ध्यान कर दमयन्ती दूत रूप में अभ्यागत नल से निवेदन करती है कि

स्वात्मापि शीलेन तृणं विधेयं देया विहायासनभूर्निजापि ।
आनन्दवाष्पैरपि कल्प्यमम्भः पृच्छा विधेया मधुभिर्वचोभिः॥[10]

अर्थात् शीलपूर्वक अपने शरीर को भी तृण के समान नम्र कर दे, अपने ही आसन की भूमि छोड़कर अतिथि को दे दे, जल के अभाव में आनंद के अश्रुओं को ही जल बनावे तथा अत्यंत मधुर वचनों में कुशलता पूछे।

श्रीहर्ष ने मात्र धर्मशास्त्रों के वचनों का सामान्य प्रयोग नहीं किया है, अपितु संदर्भित विधानों को अपने पाण्डित्य और विदग्धता के माध्यम से कलात्मक स्वरूप में भी प्रस्तुत किया है। मनुस्मृति में उल्लिखित है[11] कि जो अन्य के रखे हुए निक्षेप अथवा न्यास का अपहरण करता है उसके लिये चौरवत् दण्ड का विधान है। इसी विधान का स्मरण करते हुए श्रीहर्ष ने राजा नल के केश –प्रसाधन का वर्णन करते हुए नैषध में लिखा है कि "राजा के केश– प्रसाधन में नियुक्त पुरुषों ने गम्भीर विचार एवं अवधान के साथ केशों का श्रृंगार किया। वस्तुतः शरद ऋतु में मयूर अपने पंखों को गिरा देते हैं, मानो कलापों को गिराते समय मयूरों ने उनकी शोभा को उन केशों के पास न्यास के रूप में सुरक्षित रख दिया था, किंतु समयान्तराल में जब उन मयूरों ने उन्हें वापस मांगा तो इन केशों ने 'न' कर दिया फलतः राजदण्ड के रूप में उन्हे बांधा जा रहा है"–

नृपस्य तत्राधिकृताः पुनः पुनर्विचार्य तान् बन्धमवापिपन् कचान्।
कलापलीलोपनिधिर्गरुत्यजः स यैरपालापि कलापिसम्पदः॥[12]

धर्मशास्त्र के आचार्यों द्वारा परदारागमन को अत्यन्त निन्द्य कर्म कहा गया है।[13] इसी स्मृति वचन का आश्रय लेकर चार्वाक ने इंद्र का उपहास उड़ाया है, जिसे श्रीहर्ष ने अपनी काव्यकला के माध्यम से नैषधीय सौंदर्य का अंग बनाया है –

परदारनिवृत्तिर्या सोऽयं स्वयमनादृतः।
अहल्याकेलिलोलेन दम्भो दम्भोलिपाणिना ॥[14]

नल के विवाह के प्रसंग में महाकवि श्रीहर्ष ने धर्मशास्त्र सम्मत वैवाहिक विधियों का विस्तार से उल्लेख किया है।'नैषधप्रकाश' के रचयिता नारायण के अनुसार देशाचार, शाखाभेद अथवा कुलाचार–विशेष के कारण सम्भव है कि विवाह के विधिक्रम में यत्र कुत्र अव्यवस्था के दर्शन हो जाएँ, किंतु इनका कारण महाकवि श्रीहर्ष का अज्ञान नहीं है। विवाह के प्रारम्भ में वर को कांस्य पात्र में दधि –मधु –घृत– मिश्रित मधुपर्क का सेवन कराया जाता है। नल के विवाह में मधुपर्क प्राशन का वर्णन और उपयोग श्रीहर्ष ने अत्यंत चमत्कारिक रूप में किया है

असिस्वदद्यन्मधुपर्कमर्पितं स तद्व्यधात्तर्कमुदिर्कदर्शिने।
यदेष पास्यन्मधुभीमजाधरं मिषेण पुण्याहविधिं तदाकृता ॥[15]

अर्थात् विचारकों के मत में, नल द्वारा मधुपर्क के आस्वादन का फल यही है कि भविष्य में जब नल अपनी प्रियतमा दमयन्ती के अधर मधु का पान करेंगे, उसी का इन्होंने शुभ मुहूर्त में यह प्रारम्भ किया है।

कन्यादान, पाणिग्रहण, अश्मारोहण इत्यादि वैवाहिक संस्कारों का भी नैषध में सविस्तर उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रन्थि–बन्धन का भी नैषध में सचमत्कार प्रयोग हुआ है।[16]धर्मशास्त्रानुसार विहित वैवाहिक संस्कार का एक अंश 'ध्रुव' तारे का दर्शन भी है जहाँ वर, वधू को ध्रुव देखने के लिये कहता है और वधू, ध्रुव को देखते हुए मन्त्रांश का उच्चारण करती है और शेष मंत्र का उच्चारण वर करता है और वधू को ध्रुव देखने के लिये कहता है। फिर वधू चाहे न देख रही हो, तो भी 'देखती हूँ' – ऐसा कहती है। इस विधि का नैषध में एवं विध उल्लेख है-

ध्रुवावलोकाय तदुन्मुखभ्रुवा निर्दिश्य पत्याभिदधे विदर्भजा ।
किमस्यन स्यादणिमाक्षिसाक्षिकस्तथापि तथ्यो महिमागमोदितः॥[17]

अर्थात् भौंहें उठाकर देखते हुए नल ने ध्रुव की ओर संकेत करके दमयन्ती को देखने के लिये कहा। अत्यंत लघु होते हुए भी क्या ध्रुव तारा दमयन्ती को स्वयं न दिखायी देता?किंतु वैदिक मंत्र विधि को प्रामाणिक मानते हुए नल ने उसके अनुसार स्वयं ध्रुव तारे को दमयन्ती को दिखाया।

लाजाहोम (देशज– लावा परछन) की सर्वज्ञात विधि का अत्यंत मनोहर और आलंकारिक वर्णन करने में अपनी प्रौढ कल्पना के अद्भुत स्वरूप का दर्शन कराते हैं श्रीहर्ष। पत्तों में पुष्पों की, आकाश में तारागणों की, तथा मुख में दंतावलियों से समानता का सुंदर चित्र प्रस्तुत करते हुए वे उक्त वैवाहिक संस्कार की विधि को तथा उसके औचित्य को अद्भुत स्वरूप में निदर्शित करते हैं कि 'दमयन्ती के कर –पल्लवों में लाजे, श्वेत पुष्पों की भाँति शोभायमान हो रहे थे। उसके हाथों से निराधार गिरते हुए तारों की भांति प्रकाशित हो रहे थे और देवों के मुखस्वरूप अग्नि मे पड़कर श्वेत दन्तों की शोभा प्राप्त कर रहे थे -

प्रसूनता तत्करपल्लवस्थितैरुडुच्छविर्व्योमविहारिभिः पथि।
मुखेऽमराणामनलेरदावलेरभाजिलाजैरनयोज्झितैर्दुतिः॥[18]

धर्मशास्त्रों की रचना ही विधि–निषेध की प्रक्रिया के आधार पर सम्पन्न हुई है, जहाँ इनसे सम्बन्धित विषयों को विस्तार

से व्याख्यायित किया गया है। विहित कर्मों का अनादर तथा निषिद्ध कर्मों का अनुराग से संवलित आचरण मनुष्य को पतित कर देता है–

विहितस्याननुष्ठानान्निषिद्धस्य च सेवनात्।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥[19]

चार्वाक, बौद्ध तथा जैन आदि निरीश्वरवादी सिद्धांतो में इसी प्रकार के विधि– निषेधों का यत्र तत्र विधान प्राप्त हो जाता है। नैषध में यमदेव चार्वाक से कहते हैं कि कुछ वेद विहित धर्मों को आप भी निन्द्य समझते हैं तो अन्य विधि– निषेध जो यथासम्भव श्रुति सम्मत हों, आप को स्वीकार्य होना चाहिए –

क्वापि सर्वैरवैमत्यात्पातित्यादन्यथा क्वचित्।
स्थातव्यं श्रौत एव स्याद्धर्मे शेषेऽपि तत्कृते ॥[20]

गुरु के दक्षिण – वाम चरणों का स्पर्श नीचे– ऊपर किए हुए अपने वाम– दक्षिण हस्तों से करना ही ब्रह्माञ्जलि है जिसे सदैव वेदाध्ययन के प्रारम्भ में तथा अध्ययन की समाप्ति पर किया जाना चहिए,ऐसा मनुस्मृति का निर्देश है –

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः॥[21]

नैषध में महाकवि श्रीहर्ष ने ब्रह्माञ्जलि का उल्लेख सत्रहवें सर्ग में किया है, जहाँ कलि ने वेदपाठी वैदिक विद्वानों को ब्रह्माञ्जलियाँ बांधे हुए देखा। कलि के उतने ही दुःखाश्रु गिरे जितनी ब्रह्माञ्जलियाँ उसने देखीं।[22]

याज्ञवल्क्य स्मृति ने भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व अपोशान अथवा आपोशान क्रिया सम्पादित करने का निर्देश किया है।[23] कनिष्ठिका अंगुली को फैलाकर तथा शेष अंगुलियों को मोड़कर भोजन के पूर्व आचमन करना ही आपोशान क्रिया है। ऐसा विश्वास है कि इस क्रिया के सम्पादन से भोज्य पदार्थ में अमृतत्त्व का प्रवेश हो जाता है। प्रभात वर्णन के प्रसंग में अपनी वैदुषी एवम् अप्रतिम पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हुए श्रीहर्ष महाकवि ने अपूर्व युक्ति के साथ आपोशान क्रिया कीकल्पना की है –

मिहिरकिरणाभोगं भोक्तुं प्रवृत्ततया पुरः
कलितचुलुकापोशानस्य ग्रहार्थमियं किमु ।
इति विकसितेनैकेनप्राग्दलेन सरोजिनी
जनयति मति साक्षात्कर्तुर्जनस्य दिनोदये ॥[24]

अर्थात् प्रभात वेला में कमलिनी की प्रथम पंखुड़ी को विकसित तथा अन्य पंखुड़ियों को सम्पुटित देखकर लोगों के मन में यही ध्यान आता है, मानो सूर्य की किरणों का प्रथम बार भोग करने के लिए कमलिनी आपोशान क्रिया कर रही है ।

निस्सन्देह नैषध महाकाव्य धर्मशास्त्रानुकूल आचरणों के उदाहरणों से संवलित है। श्रीहर्ष ने निश्चय ही धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। यही कारण है कि वे विभिन्न स्थलों पर उक्त आदर्शों को नैषध का भाग बनाने में सफल हुए हैं। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि यदि मनुष्य किसी को कोई धन समर्पित करे, वह उसे उसी प्रकार वापस ले ले क्योंकि जिस प्रकार समर्पण होता है, उसी प्रकार वापस भी होना चाहिए -

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः।
स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथाग्रहः॥[25]

ऐसे ही निक्षेप का उल्लेख श्रीहर्ष ने नैषध में नल दमयन्ती के प्रेमालाप के क्षणों में किया है जब नल दमयन्ती से कहते हैं,

"क्या तुम्हारी स्मृति में वह घटना भी है जब मैंने स्वयं द्वारा चर्वित ताम्बूल के खण्डों को तुम्हारे मुख में रख दिया था और पुनः शास्त्रोक्त न्यायानुसार उनको वापस मांगा था ?"[26]

सूर्यास्त और सूर्योदय के समय सोते रहने वाले व्यक्तियों को पातकी (पापी) कहा जाता है। क्रम से अभिनिर्मुक्त तथा अभ्युदित की संज्ञासे अभिहित ऐसे पातकियों हेतु धर्मशास्त्र में प्रायश्चित्त का भी विधान है। मनु का भी कथन है कि ऐसे पुरुष प्रायश्चित्त के अभाव में महत्पाप के भागी होते हैं। ऐसे ही पातकियों का उल्लेख नैषध के सत्रहवें सर्ग में प्राप्त होता है, जहाँ कलि को प्रयत्नाधिक्य के पश्चात् भी निषध राजधानी में कोई अभिनिर्मुक्त नहीं मिला। उसने जीवन्मुक्त हो चुके ब्रह्मज्ञानियों को तो देखा, किंतु सूर्यास्त के समय सोने वाले आचार भ्रष्टों को कहीं न देखा–

तेनादृश्यन्त वीरघ्ना न तु वीरहणो जनाः।
नापश्यत् सोऽभिनिर्मुक्ताञ्जीवन्मुक्तानवैक्षत्॥[27]

मिथ्या शपथ के सन्दर्भ में धर्मशास्त्र की आज्ञा एवंविध है–

न वृथा शपथं कुर्यात् स्वल्पेऽप्यर्थे नरोबुधः।
वृथाहि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेह च नश्यति॥[28]

अर्थात् धीमान् मनुष्य को अल्पकार्य हेतु मिथ्या शपथ नहीं ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार की शपथ लेकर मनुष्य इहलोक और परलोक दोनो ही विनष्टकर लेता है। दमयन्ती की सखी अपनी शपथ में 'देव' शब्द की व्याख्या करते हुए मिथ्या शपथ के भय से आक्रान्त है और कहती है कि देवता सम्बंधी उठाई गई शपथ का निश्चित ही अत्यंत कठोर परिणाम होता है।[29]

उत्तमर्ण (ऋणदाता) और अधमर्ण (ऋणगृहीता) के विशिष्ट सम्बन्धों को स्मृतिकारों ने व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करते हुए स्पष्ट नियमों का भी विधान किया है कि ऋणदाता को दिए गए ऋण पर प्रतिमास कितना ब्याज लेना चाहिए, जिससे उसे धन सम्बन्धी कोई पातक स्पर्श न कर सके। अस्तु, अधमर्ण उत्तमर्ण से सदैव भयभीत रहता है। व्यवहार के इस सिद्धान्त का भावदमयन्ती की नेत्र–सम्पत्ति के वर्णन में प्राप्त होता है –

ऋणीकृता किं हरिणीभिरासीदस्याः सकाशान्नयनद्वयश्रीः।
भूयो गुणेयं सकलाबलाद्यताभ्यो नयालभ्यत बिभ्यतीभ्यः॥[30]

अर्थात् क्या हरिणियों ने दमयन्ती से दोनों नेत्रों की कान्ति ऋणरूप में ली थी , जो इसने डरती हुई उन मृगियों से वह सम्पूर्ण कान्ति कई गुनी करके प्राप्त किया।

निष्कर्ष

वस्तुतः धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र हैं, जिनमें व्यावहारिक जीवन के पालनीय नियमों के माध्यम से व्यक्ति को अनुशासित किए जाने के विधान उल्लिखित हैं। श्रीहर्ष द्वारा नैषध में विभिन्न स्थलों पर धर्मशा स्त्रीय नियमों को घटनाओ में गूंथा गया है, जो वास्तव में श्रीहर्ष के प्रखर पाण्डित्य का ही परिणाम है। किन्तु नैषध में ऐसे स्थलों पर अनुशासन का संदर्भ गूढ है। सुधी आलोचकों की दृष्टि में नैषध एक विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है , जिसमें सुचारु रूप से अलंकृत वस्तुओं के चुनाव तथा रमणीयता में सर्वत्र सुसंस्कृति झलकती है। यह सुसंस्कृति धर्मशास्त्र रूपी अलंकरण के प्रयोग के सम्बन्ध में भी सत्य है। यदि नैषध को भाव- प्रवण पद्य रचनाओं के लिए, विदग्ध शैली के लिए, अद्वैत तत्त्व की पौनः पुन्येन स्थापना के लिए, प्रौढ शास्त्रचर्चा के लिए अथवा व्याकरण के पद -प्रयोग के विषय में चुटीले व्यंग्यात्मक संदर्श के लिए स्मरण किया जाएगा, तो वहीं उसे धर्मशास्त्रीय निर्देशों व आज्ञाओं के पुष्पों से गुम्फित सामयिक ग्रंथमाल के रूप में भी आदर प्राप्त होगा ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शुक्ल, डॉ.चण्डिकाप्रसाद (१९६०), नैषध परिशीलन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद*
2. *उपाध्याय, रामजी (१९७०), संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल विजयकुमार, इलाहाबाद*
3. *उपाध्याय, बलदेव (१९८७), संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी*
4. *आचार्य, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी (१९८९), संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास , रामनारायण लाल विजयकुमार, इलाहाबाद*
5. *त्रिपाठी, डॉ. रमाशंकर (२०१७), संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी*
6. *तिवारी, डॉ. शशि (२०२०), संस्कृत साहित्य का इतिहास, दि भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी*

अंत टिप्पणी

1. *व्युत्पत्त्यभ्याससंस्कृता प्रतिभास्य हेतुः (काव्यानुशासन, प्रथम अध्याय)*
2. *नैषध०, 1/97*
3. *नैषध० 2/10*
4. *वही, 4/79*
5. *वही, 2/12*
6. *मिताक्षरा, आचाराध्याय, 203*
7. *नैषध०, 5/83*
8. *वही, 6/97*
9. *वही, 17/32*
10. *वही, 8/21*
11. *यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।*
    तावुभौ चौरवत्दास्यो दाप्यो वा तत्समं दमम् ॥ मनुस्मृति, 8/191
12. *नैषध०,15/58*
13. *मनुस्मृति, 4/134*
14. *नैषध०, 17/43*
15. *नैषध०, 16/13*
16. *वही, 16/37*
17. *वही, 16/38*
18. *वही, 16/40*
19. *याज्ञवल्क्य स्मृति, प्रायश्चित्ताध्याय, 219*
20. *नैषध०, 17/101*
21. *मनुस्मृति, 2/71*
22. *नैषध०,17/183*
23. *कृताग्निकार्योभुञ्जीतवाग्यतोगुर्वनुज्ञया।*
    अपोशान क्रिया पूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन्॥याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय, 31
24. *नैषध०, 17/28*
25. *मनुस्मृति, 8/180*
26. *नैषध०, 20/82*
27. *वही, 17/197*
28. *मनुस्मृति, 8/111*
29. *नैषध०, 20/118*
30. *नैषध०, 7/33*